अयोध्यावासियों सहित श्री भरत-शत्रुघ्न आदि का वनगमन

चौपाई :

*** घर घर साजहिं बाहन नाना। हरषु हृदयँ परभात पयाना॥ भरत जाइ घर कीन्ह बिचारू। नगरु बाजि गज भवन भँडारू॥1॥

भावार्थ:

घर-घर लोग अनेकों प्रकार की सवारियाँ सजा रहे हैं। हृदय में (बड़ा) हर्ष है कि सबेरे चलना है। भरतजी ने घर जाकर विचार किया कि नगर घोड़े, हाथी, महल-खजाना आदि-॥1॥

*** संपति सब रघुपति कै आही। जौं बिनु जतन चलौं तजि ताही॥ तौ परिनाम न मोरि भलाई। पाप सिरोमनि साइँ दोहाई॥2॥

भावार्थ:

सारी सम्पत्ति श्री रघुनाथजी की है। यदि उसकी (रक्षा की) व्यवस्था किए बिना उसे ऐसे ही छोड़कर चल दूँ, तो परिणाम में मेरी भलाई नहीं है, क्योंकि स्वामी का द्रोह सब पापों में शिरोमणि (श्रेष्ठ) है॥2॥

*** करइ स्वामि हित सेवकु सोई। दूषन कोटि देइ किन कोई॥ अस बिचारि सुचि सेवक बोले। जे सपनेहुँ निज धरम न डोले॥3॥

भावार्थ:

सेवक वही है, जो स्वामी का हित करे, चाहे कोई करोड़ों दोष क्यों न दे। भरतजी ने ऐसा विचारकर ऐसे विश्वासपात्र सेवकों को बुलाया, जो कभी स्वप्न में भी अपने धर्म से नहीं डिगे थे॥3॥

*** कहि सबु मरमु धरमु भल भाषा। जो जेहि लायक सो तेहिं राखा॥ करि सबु जतनु राखि रखवारे। राम मातु पहिं भरतु सिधारे॥4॥

भावार्थ:

भरतजी ने उनको सब भेद समझाकर फिर उत्तम धर्म बतलाया और जो जिस योग्य था, उसे उसी काम पर नियुक्त कर दिया। सब व्यवस्था करके, रक्षकों को रखकर भरतजी राम माता कौसल्याजी के पास गए॥4॥

दोहा :

*** आरत जननी जानि सब भरत सनेह सुजान। कहेउ बनावन पालकीं सजन सुखासन जान॥186॥

भावार्थ:

स्नेह के सुजान (प्रेम के तत्व को जानने वाले) भरतजी ने सब माताओं को आर्त (दुःखी) जानकर

उनके लिए पालकियाँ तैयार करने तथा सुखासन यान (सुखपाल) सजाने के लिए कहा॥186॥

चौपाई :

*** चक्क चक्कि जिमि पुर नर नारी। चहत प्रात उर आरत भारी॥ जागत सब निसि भयउ बिहाना। भरत बोलाए सचिव सुजाना॥1॥

भावार्थ:

नगर के नर-नारी चकवे-चकवी की भाँति हृदय में अत्यन्त आर्त होकर प्रातःकाल का होना चाहते हैं। सारी रात जागते-जागते सबेरा हो गया। तब भरतजी ने चतुर मंत्रियों को बुलवाया॥1॥

*** कहेउ लेहु सबु तिलक समाजू। बनहिं देब मुनि रामहि राजू॥ बेगि चलहु सुनि सचिव जोहारे। तुरत तुरग रथ नाग सँवारे॥2॥

भावार्थ:

और कहा- तिलक का सब सामान ले चलो। वन में ही मुनि वशिष्ठजी श्री रामचन्द्रजी को राज्य देंगे, जल्दी चलो। यह सुनकर मंत्रियों ने वंदना की और तुरंत घोड़े, रथ और हाथी सजवा दिए॥2॥

*** अरुंधती अरु अगिनि समाऊ। रथ चढ़ि चले प्रथम मुनिराऊ॥ बिप्र बृंद चढ़ि बाहन नाना। चले सकल तप तेज निधाना॥3॥

भावार्थ:

सबसे पहले मुनिराज वशिष्ठजी अरुंधती और अग्निहोत्र की सब सामग्री सहित रथ पर सवार होकर चले। फिर ब्राह्मणों के समूह, जो सब के सब तपस्या और तेज के भंडार थे, अनेकों सवारियों पर चढ़कर चले॥3॥

*** नगर लोग सब सजि सजि जाना। चित्रकूट कहँ कीन्ह पयाना॥ सिबिका सुभग न जाहिं बखानी। चढ़ि चढ़ि चलत भईं सब रानी॥4॥

भावार्थ:

नगर के सब लोग रथों को सजा-सजाकर चित्रकूट को चल पड़े। जिनका वर्णन नहीं हो सकता, ऐसी सुंदर पालकियों पर चढ़-चढ़कर सब रानियाँ चलीं॥4॥

दोहा :

*** सौंपि नगर सुचि सेवकनि सादर सकल चलाइ। सुमिरि राम सिय चरन तब चले भरत दोउ भाइ॥187॥

भावार्थ:

विश्वासपात्र सेवकों को नगर सौंपकर और सबको आदरपूर्वक रवाना करके, तब श्री सीता-रामजी के चरणों को स्मरण करके भरत-शत्रुघ्न दोनों भाई चले॥187॥

चौपाई :

*** राम दरस बस सब नर नारी। जनु करि करिनि चले तकि बारी॥ बन सिय रामु समुझि मन माहीं। सानुज भरत पयादेहिं जाहीं॥1॥

भावार्थ:

श्री रामचन्द्रजी के दर्शन के वश में हुए (दर्शन की अनन्य लालसा से) सब नर-नारी ऐसे चले मानो प्यासे हाथी-हथिनी जल को तककर (बड़ी तेजी से बावले से हुए) जा रहे हों। श्री सीताजी-रामजी (सब सुखों को छोड़कर) वन में हैं, मन में ऐसा विचार करके छोटे भाई शत्रुघ्नजी सहित भरतजी पैदल ही चले जा रहे हैं॥1॥

***देखि सनेहु लोग अनुरागे। उतरि चले हय गय रथ त्यागे॥ जाइ समीप राखि निज डोली। राम मातु मृदु बानी बोली॥2॥

भावार्थ:

उनका स्नेह देखकर लोग प्रेम में मग्न हो गए और सब घोड़े, हाथी, रथों को छोड़कर उनसे उतरकर पैदल चलने लगे। तब श्री रामचन्द्रजी की माता कौसल्याजी भरत के पास जाकर और अपनी पालकी उनके समीप खड़ी करके कोमल वाणी से बोलीं-॥2॥

*** तात चढ़हु रथ बलि महतारी। होइहि प्रिय परिवारु दुखारी॥ तुम्हरें चलत चलिहि सबु लोगू। सकल सोक कृस नहिं मग जोगू॥3॥

भावार्थ:

हे बेटा! माता बलैया लेती है, तुम रथ पर चढ़ जाओ। नहीं तो सारा परिवार दुःखी हो जाएगा। तुम्हारे पैदल चलने से सभी लोग पैदल चलेंगे। शोक के मारे सब दुबले हो रहे हैं, पैदल रास्ते के (पैदल चलने के) योग्य नहीं हैं॥3॥

*** सिर धरि बचन चरन सिरु नाई। रथ चढ़ि चलत भए दोउ भाई॥ तमसा प्रथम दिवस करि बासू। दूसर गोमति तीर निवासू॥4॥

भावार्थ:

माता की आज्ञा को सिर चढ़ाकर और उनके चरणों में सिर नवाकर दोनों भाई रथ पर चढ़कर चलने लगे। पहले दिन तमसा पर वास (मुकाम) करके दूसरा मुकाम गोमती के तीर पर किया॥4॥

दोहा :

*** पय अहार फल असन एक निसि भोजन एक लोग। करत राम हित नेम ब्रत परिहरि भूषन भोग॥188॥

भावार्थ:

कोई दूध ही पीते, कोई फलाहार करते और कुछ लोग रात को एक ही बार भोजन करते हैं। भूषण और भोग-विलास को छोड़कर सब लोग श्री रामचन्द्रजी के लिए नियम और व्रत करते हैं॥188॥

निषाद की शंका और सावधानी

चौपाई :

*** सई तीर बसि चले बिहाने। सृंगबेरपुर सब निअराने॥ समाचार सब सुने निषादा। हृदयँ बिचार करइ सबिषादा॥1॥

भावार्थ:

रात भर सई नदी के तीर पर निवास करके सबेरे वहाँ से चल दिए और सब श्रृंगवेरपुर के समीप जा पहुँचे। निषादराज ने सब समाचार सुने, तो वह दुःखी होकर हृदय में विचार करने लगा-॥1॥

*** कारन कवन भरतु बन जाहीं। है कछु कपट भाउ मन माहीं॥ जौं पै जियँ न होति कुटिलाई। तौ कत लीन्ह संग कटकाई॥2॥

भावार्थ:

क्या कारण है जो भरत वन को जा रहे हैं, मन में कुछ कपट भाव अवश्य है। यदि मन में कुटिलता न होती, तो साथ में सेना क्यों ले चले हैं॥2॥

*** जानहिं सानुज रामहि मारी। करउँ अकंटक राजु सुखारी॥ भरत न राजनीति उर आनी। तब कलंकु अब जीवन हानी॥3॥

भावार्थ:

समझते हैं कि छोटे भाई लक्ष्मण सहित श्री राम को मारकर सुख से निष्कण्टक राज्य करूँगा। भरत ने हृदय में राजनीति को स्थान नहीं दिया (राजनीति का विचार नहीं किया)। तब (पहले) तो कलंक ही लगा था, अब तो जीवन से ही हाथ धोना पड़ेगा॥3॥

*** सकल सुरासुर जुरहिं जुझारा। रामहि समर न जीतनिहारा॥ का आचरजु भरतु अस करहीं। नहिं बिष बेलि अमिअ फल फरहीं॥4॥

भावार्थ:

सम्पूर्ण देवता और दैत्य वीर जुट जाएँ, तो भी श्री रामजी को रण में जीतने वाला कोई नहीं है। भरत जो ऐसा कर रहे हैं, इसमें आश्चर्य ही क्या है? विष की बेलें अमृतफल कभी नहीं फलतीं!॥4॥

दोहा :

*** अस बिचारि गुहँ ग्याति सन कहेउ सजग सब होहु। हथवाँसहु बोरहु तरनि कीजिअ घाटारोहु॥189॥

भावार्थ:

ऐसा विचारकर गुह (निषादराज) ने अपनी जाति वालों से कहा कि सब लोग सावधान हो जाओ। नावों को हाथ में (कब्जे में) कर लो और फिर उन्हें डुबा दो तथा सब घाटों को रोक दो॥189॥

चौपाई :

*** होहु सँजोइल रोकहु घाटा। ठाटहु सकल मरै के ठाटा॥ सनमुख लोह भरत सन लेऊँ। जिअत न सुरसरि उतरन देऊँ॥1॥

भावार्थ:

सुसज्जित होकर घाटों को रोक लो और सब लोग मरने के साज सजा लो (अर्थात भरत से युद्ध में लड़कर मरने के लिए तैयार हो जाओ)। मैं भरत से सामने (मैदान में) लोहा लूँगा (मुठभेड़ करूँगा) और जीते जी उन्हें गंगा पार न उतरने दूँगा॥1॥

*** समर मरनु पुनि सुरसरि तीरा। राम काजु छनभंगु सरीरा॥ भरत भाइ नृपु मैं जन नीचू। बड़ें भाग असि पाइअ मीचू॥2॥

भावार्थ:

युद्ध में मरण, फिर गंगाजी का तट, श्री रामजी का काम और क्षणभंगुर शरीर (जो चाहे जब नाश हो जाए), भरत श्री रामजी के भाई और राजा (उनके हाथ से मरना) और मैं नीच सेवक- बड़े भाग्य से ऐसी मृत्यु मिलती है॥2॥

*** स्वामि काज करिहउँ रन रारी। जस धवलिहउँ भुवन दस चारी॥ तजउँ प्रान रघुनाथ निहोरें। दुहूँ हाथ मुद मोदक मोरें॥3॥

भावार्थ:

मैं स्वामी के काम के लिए रण में लड़ाई करूँगा और चौदहों लोकों को अपने यश से उज्ज्वल कर दूँगा। श्री रघुनाथजी के निमित्त प्राण त्याग दूँगा। मेरे तो दोनों ही हाथों में आनंद के लड्डू हैं (अर्थात जीत गया तो राम सेवक का यश प्राप्त करूँगा और मारा गया तो श्री रामजी की नित्य सेवा प्राप्त करूँगा)॥3॥

*** साधु समाज न जाकर लेखा। राम भगत महुँ जासु न रेखा॥ जायँ जिअत जग सो महि भारू। जननी जौबन बिटप कुठारू॥4॥

भावार्थ:

साधुओं के समाज में जिसकी गिनती नहीं और श्री रामजी के भक्तों में जिसका स्थान नहीं, वह जगत में पृथ्वी का भार होकर व्यर्थ ही जीता है। वह माता के यौवन रूपी वृक्ष के काटने के लिए कुल्हाड़ा मात्र है॥4॥

दोहा :

*** बिगत बिषाद निषादपति सबहि बढ़ाइ उछाहु। सुमिरि राम मागेउ तुरत तरकस धनुष सनाहु॥190॥

भावार्थ:

(इस प्रकार श्री रामजी के लिए प्राण समर्पण का निश्चय करके) निषादराज विषाद से रहित हो गया और सबका उत्साह बढ़ाकर तथा श्री रामचन्द्रजी का स्मरण करके उसने तुरंत ही तरकस, धनुष और कवच माँगा॥190॥

चौपाई :

*** बेगहु भाइहु सजहु सँजोऊ। सुनि रजाइ कदराइ न कोऊ॥ भलेहिं नाथ सब कहहिं सहरषा।

एकहिं एक बढ़ावइ करषा॥1॥

भावार्थ:

(उसने कहा-) हे भाइयों! जल्दी करो और सब सामान सजाओ। मेरी आज्ञा सुनकर कोई मन में कायरता न लावे। सब हर्ष के साथ बोल उठे- हे नाथ! बहुत अच्छा और आपस मेंएक-दूसरे का जोश बढ़ाने लगे॥1॥

*** चले निषाद जोहारि जोहारी। सूर सकल रन रूचइ रारी॥ सुमिरि राम पद पंकज पनहीं। भाथीं बाँधि चढ़ाइन्हि धनहीं॥2॥

भावार्थ:

निषादराज को जोहार कर-करके सब निषाद चले। सभी बड़े शूरवीर हैं और संग्राम में लड़ना उन्हें बहुत अच्छा लगता है। श्री रामचन्द्रजी के चरणकमलों की जूतियों कास्मरण करके उन्होंने भाथियाँ (छोटे-छोटे तरकस) बाँधकर धनुहियों (छोटे-छोटे धनुषों) पर प्रत्यंचा चढ़ाई॥2॥

*** अँगरी पहिरि कूँड़ि सिर धरहीं। फरसा बाँस सेल सम करहीं॥ एक कुसल अति ओड़न खाँड़े। कूदहिं गगन मनहुँ छिति छाँड़े॥3॥

भावार्थ:

कवच पहनकर सिर पर लोहे का टोप रखते हैं और फरसे, भाले तथा बरछों को सीधा कर रहे हैं (सुधार रहे हैं)। कोई तलवार के वार रोकने में अत्यन्त ही कुशल है। वे ऐसे उमंग में भरे हैं, मानो धरती छोड़कर आकाश में कूद (उछल) रहे हों॥3॥

*** निज निज साजु समाजु बनाई। गुह राउतहि जोहारे जाई॥ देखि सुभट सब लायक जाने। लै लै नाम सकल सनमाने॥4॥

भावार्थ:

अपना-अपना साज-समाज (लड़ाई का सामान और दल) बनाकर उन्होंने जाकर निषादराज गुह को जोहार की। निषादराज ने सुंदर योद्धाओं को देखकर, सबको सुयोग्य जाना और नाम ले-लेकर सबका सम्मान किया॥4॥

दोहा :

*** भाइहु लावहु धोख जनि आजु काज बड़ मोहि। सुनि सरोष बोले सुभट बीर अधीरन होहि॥191॥

भावार्थ:

(उसने कहा-) हे भाइयों! धोखा न लाना (अर्थात मरने से न घबड़ाना), आज मेरा बड़ा भारी काम है। यह सुनकर सब योद्धा बड़े जोश के साथ बोल उठे- हे वीर! अधीर मत हो॥191॥

चौपाई :

*** राम प्रताप नाथ बल तोरे। करहिं कटकु बिनु भट बिनु घोरे॥ जीवन पाउ न पाछें धरहीं। रुंड मुंडमय मेदिनि करहीं॥1॥

भावार्थ:

हे नाथ! श्री रामचन्द्रजी के प्रताप से और आपके बल से हम लोग भरत की सेना को बिना वीर और बिना घोड़े की कर देंगे (एक-एक वीर और एक-एक घोड़े को मार डालेंगे)। जीते जी पीछे पाँव न रखेंगे। पृथ्वी को रुण्ड-मुण्डमयी कर देंगे (सिरों और धड़ों से छा देंगे)॥1॥

*** दीख निषादनाथ भल टोलू। कहेउ बजाउ जुझाऊ ढोलू॥ एतना कहत छींक भइ बाँए। कहेउ सगुनिअन्ह खेत सुहाए॥2॥

भावार्थ:

निषादराज ने वीरों का बढ़िया दल देखकर कहा- जुझारू (लड़ाई का) ढोल बजाओ। इतना कहते ही बाईं ओर छींक हुई। शकुन विचारने वालों ने कहा कि खेत सुंदर हैं (जीत होगी)॥2॥

*** बूढ़ु एकु कह सगुन बिचारी। भरतहि मिलिअ न होइहि रारी॥ रामहि भरतु मनावन जाहीं। सगुन कहइ अस बिग्रहु नाहीं॥3॥

भावार्थ:

एक बूढ़े ने शकुन विचारकर कहा- भरत से मिल लीजिए, उनसे लड़ाई नहीं होगी। भरत श्री रामचन्द्रजी को मनाने जा रहे हैं। शकुन ऐसा कह रहा है कि विरोध नहीं है॥3॥

*** सुनि गुह कहइ नीक कह बूढ़ा। सहसा करि पछिताहिं बिमूढ़ा॥ भरत सुभाउ सीलु बिनु बूझें। बड़ि हित हानि जानि बिनु जूझें॥4॥

भावार्थ:

यह सुनकर निषादराज गुहने कहा- बूढ़ा ठीक कह रहा है। जल्दी में (बिना विचारे) कोई काम करके मूर्ख लोग पछताते हैं। भरतजी का शील स्वभाव बिना समझे और बिना जाने युद्ध करने में हित की बहुत बड़ी हानि है॥4॥

दोहा :

*** गहहु घाट भट समिटि सब लेउँ मरम मिलि जाइ। बूझि मित्र अरि मध्य गति तस तब करिहउँ आइ॥192॥

भावार्थ:

अतएव हे वीरों! तुम लोग इकट्ठे होकर सब घाटों को रोक लो, मैं जाकर भरतजी से मिलकर उनका भेद लेता हूँ। उनका भावमित्र का है या शत्रु का या उदासीन का, यह जानकर तब आकर वैसा (उसी के अनुसार) प्रबंध करूँगा॥192॥

चौपाई :

*** लखब सनेहु सुभायँ सुहाएँ। बैरु प्रीति नहिं दुरइँ दुराएँ॥ अस कहि भेंट सँजोवन लागे। कंद मूल फल खग मृग मागे॥1॥

भावार्थ:

उनके सुंदर स्वभाव से मैं उनके स्नेह को पहचान लूँगा। वैर और प्रेम छिपाने से नहीं छिपते। ऐसा

कहकर वह भेंट का सामान सजाने लगा। उसने कंद, मूल, फल, पक्षी और हिरन मँगवाए॥1॥

*** मीन पीन पाठीन पुराने। भरि भरि भार कहारन्ह आने॥ मिलन साजु सजि मिलन सिधाए। मंगल मूल सगुन सुभ पाए॥2॥

भावार्थ:

कहार लोग पुरानी और मोटी पहिना नामक मछलियों के भार भर-भरकर लाए। भेंट का सामान सजाकर मिलने के लिए चले तो मंगलदायक शुभ-शकुन मिले॥2॥

*** देखि दूरि तें कहि निज नामू। कीन्ह मुनीसहि दंड प्रनामू॥ जानि रामप्रिय दीन्हि असीसा। भरतहि कहेउ बुझाइ मुनीसा॥3॥

भावार्थ:

निषादराज ने मुनिराज वशिष्ठजी को देखकर अपना नाम बतलाकर दूर ही से दण्डवत प्रणाम किया। मुनीश्वर वशिष्ठजी ने उसको राम का प्यारा जानकर आशीर्वाद दिया और भरतजी को समझाकर कहा (कि यह श्री रामजी का मित्र है)॥3॥

*** राम सखा सुनि संदनु त्यागा। चले उचरि उमगत अनुरागा॥ गाउँ जाति गुहँ नाउँ सुनाई। कीन्ह जोहारु माथ महि लाई॥4॥

भावार्थ:

यह श्री राम का मित्र है, इतना सुनते ही भरतजी ने रथ त्याग दिया। वे रथ से उतरकर प्रेम में उमँगते हुए चले। निषादराज गुह ने अपना गाँव, जाति और नाम सुनाकर पृथ्वी पर माथा टेककर जोहार की॥4॥

दोहा :

*** करत दंडवत देखि तेहि भरत लीन्ह उर लाइ। मनहुँ लखन सन भेंट भइ प्रेमु न हृदयँ समाइ॥193॥

भावार्थ:

दण्डवत करते देखकर भरतजी ने उठाकर उसको छाती से लगा लिया। हृदय में प्रेम समाता नहीं है, मानो स्वयं लक्ष्मणजी से भेंट हो गई हो॥193॥